धर्मामृत

—सम्यग्दर्शन का कथामय निरूपण

समीक्षक : डॉ० रवेलचन्द आनन्द

युगपुरुष पूज्य श्री १०८ आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज दिगम्बर तपस्वियों की श्रेणी में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। उन्होंने साधुचर्या करते हुए धार्मिक प्रवचनों द्वारा भारत भूमि के प्रायः सभी अंचलों को तपोपूत किया है, साथ ही सत्साहित्य की सर्जना द्वारा जैन-धर्म के सिद्धान्तों का संश्लेषण-विश्लेषण और व्याख्या-भाष्य प्रस्तुत कर जैन-साहित्य की अभिवृद्धि की है। आचार्यरत्न ने लगभग ७५-८० ग्रन्थों का प्रणयन किया है। इनमें उनके मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के ग्रन्थ हैं। आचार्यरत्न ने भारत की कई प्रादेशिक भाषाओं विशेष रूप से कन्नड़ भाषा की जैन-कृतियों को हिन्दी में अनूदित कर जैन धर्म और हिन्दी भाषा और साहित्य को उपकृत किया है। 'धर्मामृत' भी उनकी कन्नड़ भाषा से अनूदित महत्त्वपूर्ण कृति है।

'धर्मामृत' (हिन्दी अनुवाद दो भागों में) के मूल लेखक श्री नयसेन हैं। यह गद्यपद्यात्मक कृति १४ आश्वासों में विभक्त है। इस रचना का परिसमाप्ति काल कवि के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर शक संवत् ११७६ है। कवि ने स्वयं को मुलुगुन्द ग्राम का निवासी कहा है और जिनेन्द्र के चरणों में भक्ति उत्पन्न करने के उद्देश्य से प्रेरित होकर उसने इस काव्य की रचना की है। इस ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन, उसके आठ अंगों तथा पांच व्रतों का सुन्दर निरूपण हुआ है। इस निरूपण के लिए रचनाकार ने कथाओं का माध्यम अपनाया है। जैन-साहित्य के लेखकों और आचार्यों की एक प्रवृत्ति यह रही है कि वे किसी सिद्धान्त-प्रधान रचना में सिद्धान्त-विशेष के प्रतिपादन के अनन्तर कथा-माध्यम द्वारा उसका स्पष्टीकरण करते हैं और बीच-बीच में सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत करते हुए उपदेश देना भी नहीं भूलते। नयसेन की इस रचना में भी यही प्रवृत्ति देखी जा सकती है। इन कथाओं को पढ़ते समय पाठक इनमें रसमग्न हो जाता है और साथ ही 'धर्मामृत' के उपदेश-पीयूष का भी पान करता है। रचनाकार बड़े ही प्रभावी ढंग से ओजस्विनी शैली में कथा कहता हुआ सम्यग्दर्शन की व्याख्या करता जाता है और पाठक को बड़े सहज रूप से, अनायास ही जैन धर्म के सिद्धान्तों से अवगत कराता जाता है। इस प्रकार यह ग्रन्थ जैन धर्म-सिद्धान्तों का अमृतमय प्रवाह अपने में समेटे हुए अपने नाम को सार्थक करता है और अपने अज्ञातवृत्त रचयिता की अक्षुण्ण कीर्ति का आधारस्तम्भ बन जाता है।

ग्रन्थ का आरम्भ भारतीय काव्य पद्धति के अनुकूल मंगलाचरण के साथ होता है, जिसमें ग्रन्थकार श्री जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति करके उनके चरणों में 'त्रिलोक में सारभूत उत्कृष्ट सुख की प्राप्ति के मार्ग-दर्शन के लिए' प्रार्थना करता है। ग्रन्थ के इस हिन्दी अनुवाद में आचार्यरत्न ने मंगलाचरण की विद्वत्तापूर्ण व्याख्या करते हुए मंगलस्तवन की परिपाटी, सच्चे देव, अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, गुरु आदि के गुणों और स्वरूप का स्पष्टीकरण किया है। इस प्रकार अनुवादक मूल ग्रंथ के अनुवाद के साथ-साथ टिप्पणी और भाष्य के रूप में जिस व्याख्या को प्रस्तुत करता है, उसमें उसकी विद्वत्ता तो प्रकट होती है, साथ ही मौलिक सृजन की प्रतिभा भी उद्भासित होती है। अनुवादक अपनी बात की पुष्टि के लिए प्राचीन धर्म-ग्रन्थों से उद्धरण भी प्रस्तुत करता है। 'सिद्ध' के सम्बन्ध में निम्नलिखित कथन से इसकी पुष्टि की जा सकती है—"जैसे संसारी जीव रागद्वेष मोह से वासित होकर मन, वचन, काय के योगों से व्यापार करते हुए शुभ व अशुभ कर्मों का संचय करते हैं, अतएव वे कर्मों का कारण हो जाते हैं, वैसे सिद्ध परमात्मा रागद्वेष, मोह व योगों के हलन-चलन से रहित होते हुए न किसी कर्म-वर्गणा को बांधते हैं, न कभी उस बंध का फल सुख-दुःख या संसार में भ्रमण पा सकते हैं।" (धर्मामृत, प्रथम भाग, पृष्ठ १८)

'मंगलाचरण' के अनन्तर कवीन्द्र नयसेन ने काव्य के उद्देश्य, सुकवि और कुकवि में अन्तर, आध्यात्मिक विषय-वस्तु की प्रस्थापना, संस्कृत और भाषा काव्य की भिन्नता आदि का संक्षिप्त विवेचन किया है। कवि नयसेन के विचार हिन्दी के मध्ययुगीन रामभक्त कवि तुलसी के 'रामचरित मानस' के बालकाण्ड के प्रारम्भिककाव्यांश का स्मरण करा देते हैं, जहां कवि तुलसी घोषणा करते हैं, "कीन्हें प्राकृत जन गुणगाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना।" नयसेन लिखते हैं—"जिस प्रकार रसोई में बिना नमक के सरस शाक आदि भोजन नहीं बन सकता है तथा घी के साथ अगर नमक का प्रयोग नहीं किया गया तो जीभ को स्वाद नहीं आता, उसी प्रकार यदि कविता में भगवान् की वाणी का रसास्वाद नहीं होगा तो वह मधुर और सुकाव्य नहीं बन सकती। (धर्मामृत, प्रथम भाग, पृष्ठ ४६)। इसी प्रकार तुलसी की तरह नयसेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने काव्य को सज्जनों द्वारा ग्राह्य और दुर्जनों द्वारा अग्राह्य मानते हैं—"सज्जन लोग मेरे द्वारा रचे हुए काव्य को देखकर किसी प्रकार की अवहेलना करेंगे या उस रचे हुए काव्य की निन्दा करेंगे, उसके विषय में मुझे तिलमात्र भी डर नहीं है, क्योंकि सज्जन लोग सदा एक से ही रहते हैं। वे काव्य के दोष को ग्रहण नहीं करते, उसके सार को ही ग्रहण करते हैं। और दुर्जन लोग सदा दुष्ट व्यवहार करते हैं, सार गर्भित मधुर कविता होने पर भी अपने अभिप्राय की बातें न मिलने के कारण उस सुकवि के रचे हुए काव्य की निन्दा करते रहते हैं। इसलिए मैं सबसे पहले अपने काव्य में दोषग्राही दुर्जनों को भी भगवान् समझकर पहले उनकी प्रदक्षिणा देता हूं।" (धर्मामृत प्र० भा०, पृष्ठ ४६-४७) नयसेन के इस कथन और तुलसी के सज्जन-दुर्जन प्रसंग में अद्भुत साम्य है। इतना ही नहीं कन्नड़ का यह साहित्यकार तुलसी की भांति ही 'कवि न होऊं नहिं चतुर कहावऊं। मति अनुरूप राम गुन गावहुं' की धारणा में विश्वास रखता है और अपनी विनम्रता इस प्रकार प्रकट करता है—"महान् कवियों के सामने मैं एक अल्पज्ञ बुद्धि कैसे टिक सकता हूं। अतः मेरे द्वारा रचे हुए काव्य में सज्जन लोग मेरे दोषों को न देखकर मेरे काव्य का पठन करें।" (धर्मामृत प्र० भा०, पृष्ठ ४७) अन्त में कवि इस ग्रंथ के प्रतिपाद्य के विषय में तुलसी की भांति ही संकेत करता है—"जो अतिशयशाली जिनेन्द्र भगवान् के वचनामृत से परिपूरित है, जो समस्त जीवों का हित करने वाला है, पुण्यों को उत्पन्न करने वाला है, जो भव्यजनों से स्तुत है, पवित्र है, ऐसे धर्मामृत नाम काव्य को मैं विस्तारपूर्वक यथामति कहूंगा। (धर्मामृत प्र० भा०, पृष्ठ ४६) इस प्रकार उत्तर भारत की अवधी भाषा में रचित 'रामचरितमानस' तथा दक्षिण भारत की कन्नड़ भाषा में रचित 'धर्मामृत' के प्रारम्भिक अंशों को पढ़कर सुखद आश्चर्य होता है कि सम्पूर्ण भारत में विचारों का किस प्रकार अद्भुत साम्य था। एक-दूसरे को ये कवि विचारों के आदान-प्रदान से किस प्रकार प्रभावित करते थे।

'धर्मामृत' के वक्ता गौतम गणधर हैं और श्रोता राजा श्रेणिक। कवि के अनुसार 'सम्यग्दर्शन' चतुर्गति के जन्म-जरा-मरण को दूर कर अनंत सुख प्रदान करने वाला है। कवि कहता है कि "इसके बिना यदि कोई मोक्ष की अभिलाषा करता है तो वह उसके समान है जैसे कोई बिना नेत्र देखना चाहता है, मिट्टी में बीज बोए बिना फल की इच्छा करता है, बिना बाण के लक्ष्यबेध करना चाहता है, बिना जहाज के समुद्र पार होना चाहता है।" (धर्मामृत प्र० भा०, पृष्ठ ५४) प्रथम आश्वास में कवि ने सम्यग्दर्शन के महत्त्व और स्वरूप का विस्तार से विवेचन करते हुए गिरिनगर के सेठ दयामित्र की कथा द्वारा अपने विवेचन को स्पष्टता प्रदान की है। "तत्त्व के ऊपर अचल श्रद्धान रखना और व्यवहार तथा निश्चयनय मार्ग से उसे समझकर स्वात्मानुभूति करना तत्त्व श्रद्धान है। यह तत्त्व श्रद्धान (सम्यग्दर्शन) तीनों लोकों में पूजनीय है, अविनाशी सुख-शान्ति रूप मोक्ष को देने वाला है।" (धर्मामृत प्र० भा०, पृष्ठ ६२) इस सम्यग्दर्शन के बिना दान-जप-तप कुछ भी शोभा नहीं देता। इससे रहित ज्ञान और चरित्र भी अज्ञान और अचरित्र होते हैं। सम्यग्दर्शन ही निर्मल सुख का मूल है।

जैन धर्म के अनुसार सम्यग्दर्शन के आठ अंग हैं—निःशंका, निष्कांक्षता, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और धर्मप्रभावना। 'धर्मामृत' के दूसरे से नवें आश्वास तक इन्हीं अंगों का प्रतिपादन किया गया है। कवि ने बड़ी सुबोध और रोचक भाषा शैली में इनके स्वरूप और महत्त्व को स्पष्ट करते हुए आठ कथाओं द्वारा उनको जीवन में आचरित करने के महत्त्व को भी प्रकाशित किया है। ये कथाएं हैं—विजयनगर के राजा अरिमंथन तथा उसके पुत्र ललितांग की कथा, चम्पापुर के प्रियदल सेठ की पुत्री अनन्तमती की कथा, रौरवपुर के राजा उद्दायन की कथा, कामलिप्त नगर के वैभवशाली जिनेन्द्र भक्त सेठ की कथा, वारिषेण की कथा, सोमदत्त पुरोहित और बालक वज्रकुमार की कथा, अकम्पनाचार्य तथा राजा जयवर्मा की कथा। ये कथाएं यद्यपि सुपरिचित हैं, किन्तु कवि ने जिस रमणीयता और सरसता से इन्हें प्रस्तुत करते हुए सम्यग्दर्शन के आठ अंगों का विवेचन किया है, उससे ये कथाएं मौलिक और नवीन प्रतीत होती हैं।

'धर्मामृत' के अन्तिम पांच आश्वास पांच व्रतों के निरूपण से सम्बन्धित हैं। ये पांच व्रत हैं—अहिंसा व्रत, सत्य व्रत, अचौर्य व्रत, ब्रह्मचर्य व्रत, और अपरिग्रह व्रत। इन व्रतों का जैन धर्म में विशिष्ट महत्त्व है। इन्हें अणुव्रत कहा जाता है, "ये पांच अणुव्रत भव्य पुरुष को पंचरत्न के समान हैं। ये ही पांच रत्न मोक्ष-प्राप्ति करने में साधनभूत हैं, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। ये पांच रत्न मनुष्य को हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांच पापों से मुक्त करते हैं (धर्मामृत प्र० भा०, पृष्ठ ७६)। कवीन्द्र नयसेन ने पाँच कथाओं द्वारा इन व्रतों का निरूपण किया है। इस प्रकार 'धर्मामृत' में चौदह कथाओं के माध्यम से जैन धर्म के सम्यग्दर्शन की समग्ररूप में व्याख्या कवि नयसेन का उद्देश्य रहा है और इस उद्देश्य में कवि को पर्याप्त सफल माना जा सकता है।

'धर्मामृत' का धार्मिक महत्त्व तो असंदिग्ध है ही, इसका साहित्यिक महत्त्व भी है। सोद्देश्य काव्य की रचना करते हुए भी नयसेन ने इसके साहित्यिक एवं कलात्मक पक्ष को दृष्टि से ओझल नहीं किया। संस्कृत के स्थान पर कन्नड़ भाषा में रचना करना अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इससे कवि जन-सामान्य के निकट पहुंचा है और अपनी विचारधारा को अधिक सफलता से प्रचारित कर सका है। इस रचना में वर्णित दृष्टान्त तो मुग्ध करते ही हैं साथ ही इसमें आलंकारिक शैली का प्रयोग भी बड़ा प्रभावी बन पड़ा है। विशेष रूप से इस ग्रंथ में उपमाओं की भरमार है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए कवि ललित उपमाओं की झड़ी लगा देता है और सार्थक उपमानों के प्रयोग से अपने कथ्य को मार्मिक, सरस और प्रभावी बना देता है। किसी भी प्रसंग को पढ़िए, ललित उपमाएँ स्वयमेव पाठक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के सामने नृत्य करती हुई प्रस्तुत होती हैं। यहां एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा—"दर्शन सहित निःशंकित अंग को धारण करने वाला मनुष्य उसी प्रकार शोभा को पाता है, जैसे मंगलवेष में सजा हुआ दूल्हा, जैसे आँखों में कज्जल की रेखा, पांवों में पेंजनी, कूटने से जिसका ऊपर का छिलका उड़ गया है ऐसा धान्य, अश्व पर सवार जैसे सुन्दर युवक, जैसे विवाहोत्सव का मंगलमय घर, शूरवीर की मूंछों की बाँकी मरोड़, चावल की मुट्ठी के समान, तेजधार परशु के समान, जुती हुई सुन्दर बैलगाड़ी के समान, तोरण से शोभायमान घर के द्वार के समान, दोनों ओर कंधे पर झूलती हुई कावड़ के समान, दंतधावन से निर्मल हुए दांतों के समान, निःशंकित अंग को धारण करने वाला मनुष्य शोभा देता है।" (धर्मामृत प्र० भा०, पृष्ठ २०२) कितने व्यापक और विस्तृत क्षेत्र से अथवा यों कहिए कि लोकजीवन के विशाल प्रांगण से बटोरकर ललित उपमाओं को एक-साथ प्रस्तुत करने में कवि नयसेन अप्रतिम रूप से सफल हुए हैं। संस्कृत के कवि बाण भट्ट भी इसी प्रकार की उपमाएँ संजोते थे।

नयसेन की कन्नड़ भाषा की गौरव-कृति 'धर्मामृत' का आचार्यरत्न श्री १०८ देशभूषण जी महाराज द्वारा यह हिन्दी अनुवाद अपने आप में एक सुललित कृति बन जाता है। कन्नड़ भाषा से हिन्दी में अनुवाद करने से इस रचना के महत्त्व का तो पता चलता ही है, साथ ही आचार्यरत्न द्वारा की गई व्याख्या, भाष्य और टिप्पणियों में अनुवादक के पाण्डित्य, गम्भीर ज्ञान-गरिमा, अध्ययन-प्रवृत्ति और धर्मनिष्ठा का भी अनुमान लगाया जा सकता है। इस अनुवाद की भाषा ललित और सरस है, अतः पाठक और विशेष रूप से जैन धर्मानुयायियों के लिए सुग्राह्य है। इस रचना का अनुवाद करके आचार्यरत्न ने हिन्दी भाषा और जैन-समुदाय को तो उपकृत किया ही है, साथ ही उत्तर और दक्षिण भारत की सांस्कृतिक चेतना की मूलभूत एकता को भी रेखांकित किया है। इस प्रकार के अनुवाद राष्ट्रीय एकता को समृद्ध करने की दिशा में भी ठोस कदम कहे जा सकते हैं।

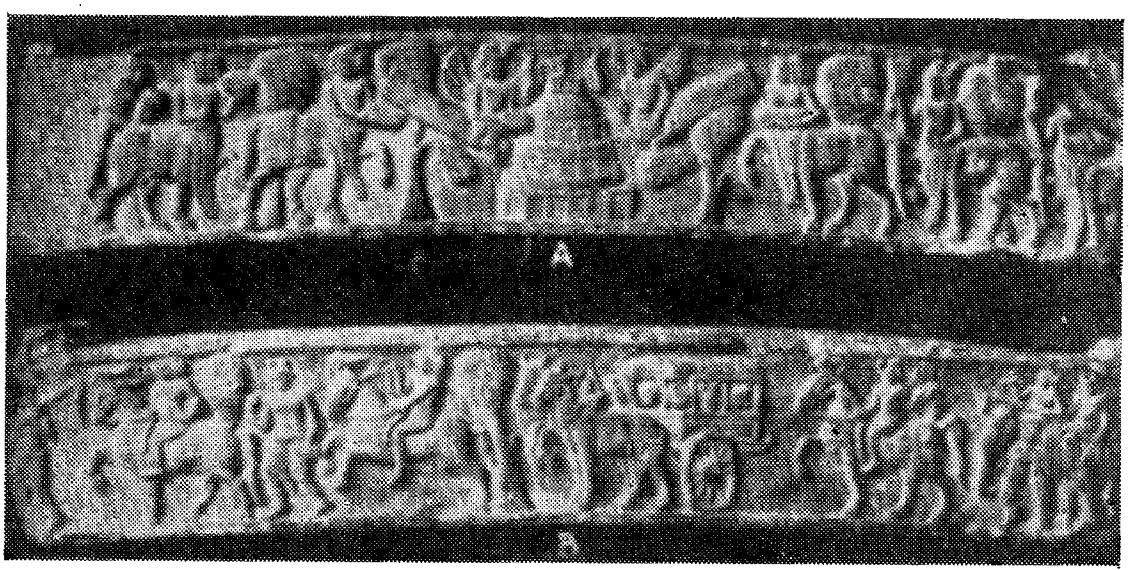

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org